वर्ष-5 अंक-4 अक्टूबर-दिसम्बर, 2015 मूल्य - ₹25

हिन्दी काव्य की संग्रहणीय त्रैमासिक पत्रिका

पारस परस

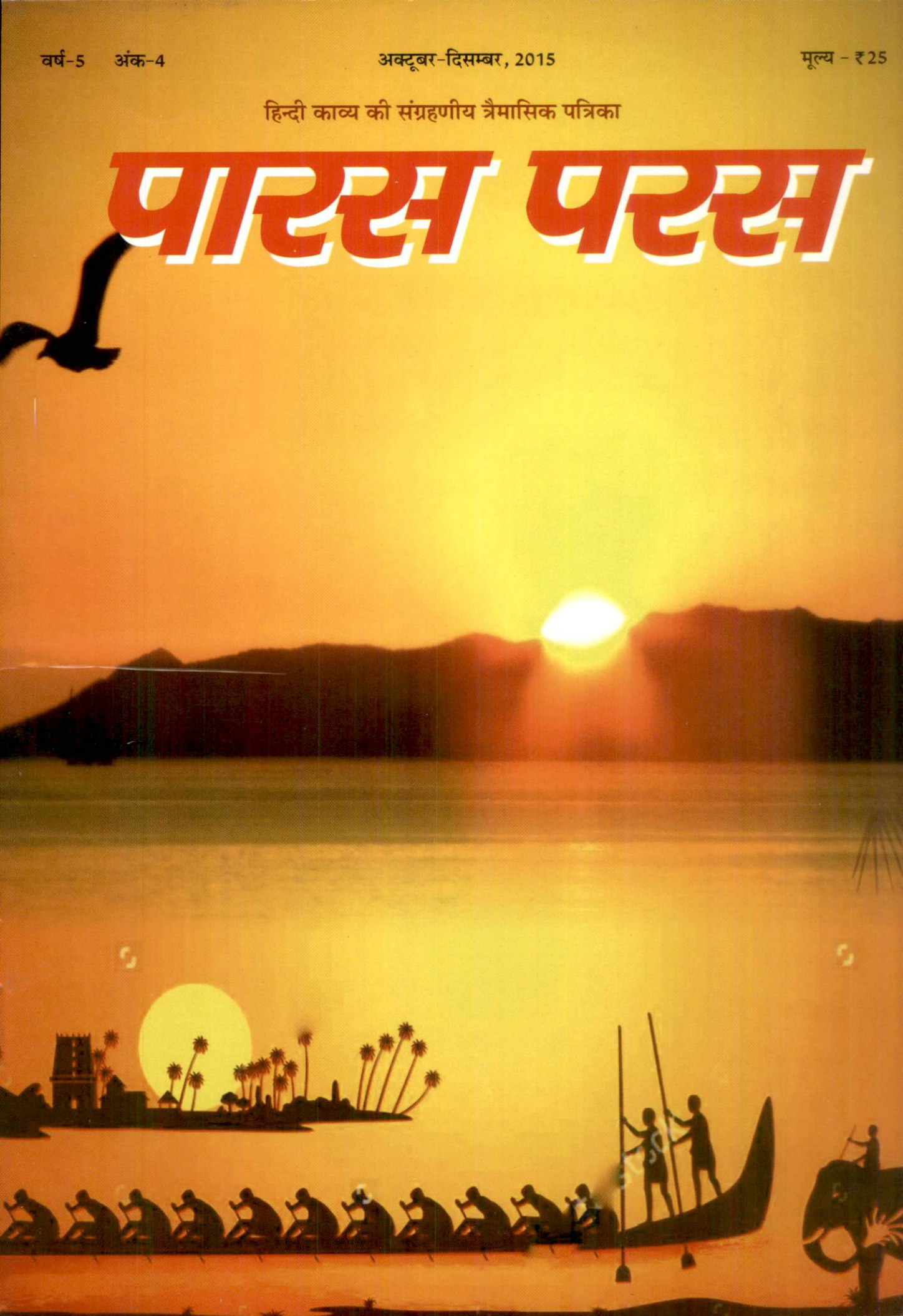

सृजन स्मरण

राम सिंहासन सहाय 'मधुर'

जन्म- 24 नवम्बर, 1903 निधन-08 जून, 1990

सीमा पुकारती बार-बार, उत्तर सँभाल, दक्षिण सँभाल।
किसकी तरुणाई लाल-लाल, किसका वक्षस्थल है विशाल।
ललकार रहा है महाकाल, खेलो भारत के नौनिहाल।
जो शत्रु ताकता सीमा पर, तुम लो उसकी आँखें निकाल।
हिमवान हमारा उत्तर है, सीमा है पत्थर की लकीर।
दक्षिण की सीमा वहाँ, जहाँ तक रामचन्द्र के उड़े तीर।
पूरब सँभाल, पश्चिम सँभाल मुस्काता आया क्या साल।
संसार हथेली पर उछाल, ले लो भारत के नौनिहाल।

वर्ष : 5 अंक : 4 अक्टूबर-दिसम्बर, 2015 रजि. नं. : यूपी एचआईएन/2011/39939

पारस परस

हिन्दी काव्य की समस्त विधाओं की संग्रहणीय त्रैमासिक पत्रिका

संरक्षक मंडल
डा. एल.पी. पाण्डेय
अभिमन्यु कुमार पाठक
अरुण कुमार पाठक

संपादक
डॉ अनिल कुमार

कार्यकारी संपादक
सुशील कुमार अवस्थी

संपादकीय कार्यालय
538 क/1324, शिवलोक
त्रिवेणी नगर तृतीय, लखनऊ
मो. 9935930783
Email: paarasparas.lucknow@gmail.com

लेआउट एवं टाइप सेटिंग
अभ्युदय प्रकाशन प्रा.लि. लखनऊ
मो. 9696433312

स्वामी प्रकाशक मुद्रक एवं संपादक डा. अनिल कुमार द्वारा प्रकाश पैकेजर्स, 257, गोलागंज, लखनऊ से मुद्रित कराकर सी-49, बटलर पैलेस कालोनी, जापलिंग रोड, लखनऊ से प्रकाशित

पारस परस में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार संबंधित रचनाकारों के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का रचनाओं में व्यक्त विचारों से सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवाद लखनऊ न्यायालय के अधीन होंगे। उपरोक्त सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय		02
श्रद्धासुमन		
अपने प्यारे बाबू जी	– डा अनिल कुमार पाठक	05
कालजयी		
जिन्दगी मेरी प्रिये,	–. पारस नाथ पाठक 'प्रसून'	06
अम्मा मुझे उड़ाओ	–राम सिंहासन सहाय 'मधुर'	07
जा, सपनों से खेलना	–शकुन्तला सिरोठिया	08
हम सब सुमन एक उपवन के	–द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी	09
समय के सारथी		
गजल	– रघुराज सिंह निश्चल	10
परिवर्तन का असर	– मधुकर अष्ठाना	11
संकल्प	– रवीन्द्र शुक्ल	12
गीत खुशी के	– चक्रधर 'नलिन'	13
मिट्टी पर मिट्टी	– हीरा लाल	14
रोशनी की आवाज	– प्रेम शंकर मिश्र	15
चेतना से भावुक जटायु का वरण हो	– डा. नरेश कात्यायन	16
सृष्टि	– डा. कृष्ण नारायण पाण्डेय	17
अंगुलियाँ	– डा. करुणाशंकर दुबे	18
गीत	– डा. नन्द लाल पथिक	19
गीत	– डा. महेश दिवाकर	20
सब के मन को भाती है	– दयानन्द जड़िया 'अबोध'	21
धरती का चाँद	– प्रेम चन्द्र गुप्त 'विशाल'	22
गजल	– वाहिद अली 'वाहिद'	23
गजल	– मिर्जा हसन 'नासिर'	24
जी भर रोये, राम	– रमाकान्त श्रीवास्तव	25
कैसे इरादे लेकर	– डा. अजय प्रसून	26
भारत वासी, हिन्दी हैं	– श्याम नारायण	27
चले चलो, बस चलो,	– विनोद चन्द्र पाण्डेय 'विनोद'	28
दामिनी खींच के लायी गयी है	– अशोक कुमार पाण्डेय 'अशोक'	29
रुकना काम नहीं है	– सत्यधर शुक्ल	30
अपने दुख	– मानिक बच्छावत	31
कलरव		
देल छे आये	– श्रीधर पाठक	32
माँ कह एक कहानी	– मैथिलीशरण गुप्त	33
चिड़िया कैसे गायेगी	– सूर्य कुमार पाण्डेय	34
नारी स्वर		
प्रेम वृक्ष	– डा नलिनी पुरोहित	35
हिन्दी–हिन्दू–हिन्दुस्तान	– रमा आर्या 'रमा'	36
रावण और राम	– डा सुशीला	37
किससे कहें	– मंजुलता तिवारी 'सुशोभिता'	38
दीप बालें	– अनीता श्रीवास्तव	39
नवोदित रचनाकार		
आत्मदर्शन योग	– सुशील मिश्र	40

व्यक्तित्व निर्माण में बाल साहित्य का योगदान

मानव की उत्पत्ति से लेकर अद्यावधि विकास–यात्रा के विहंगावलोकन से यह विदित होता है कि उसके विकास को तब गति प्राप्त हुई जब उसने सह–अस्तित्व की धारणा को अंगीकार किया, क्योंकि विकास तभी सम्भव है जब हम किसी अन्य व्यक्ति को तथा उसके हितों को स्वयं से तथा स्वयं के हितों से प्रतिकूल न मानें अपितु विभिन्न अन्तर्विरोधों को भी सकारात्मक दृष्टि व दिशा प्रदान करें जिससे हमारे हितों में कोई टकराव न हो तथा सभी के हितों के संरक्षण के साथ इनमें संतुलन एवं सामंजस्य रखते हुए विभिन्न उद्देश्यों एवं लक्ष्यों की पूर्ति सम्भव हो सके। भारतीय सांस्कृतिक परम्परा में सह–सम्बन्ध, परस्पर निर्भरता तथा विनिमय का आह्वान किया गया है। इनकी उत्कृष्टता प्राचीन आर्ष साहित्य में द्रष्टव्य है जहाँ परस्पर मिलकर चलने, बात करने, चित्त, मन एवं विचार एक समान होने तथा सबके जीवन का लक्ष्य एक होने का वर्णन प्राप्त होता है। इसके साथ ही, साथ–साथ रक्षा करने, पालन–पोषण करने, सामर्थ्य व तेज प्राप्त होने तथा परस्पर द्वेष न होने का अनुरोध किया गया है।

सामाजिक संरचना दीर्घकालिक एवं सतत् प्रक्रिया है। मानव समाज के सृजन में उक्त तथ्यों की महती भूमिका रही है। कदाचित् परोपकार, परहित, पुण्य, सत्कर्म आदि शब्दों की प्रतिष्ठा उक्त भावनाओं व कृत्यों के फलस्वरूप हुई है। भले ही समाज एक अमूर्त इकाई है किन्तु हमारे अस्तित्व एवं विकास के लिए इसकी अपरिहार्यता है तथा सदैव रहेगी। सम्भवतः इन सन्दर्भों में ही मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी कहा जाता है। समाज के अन्तर्गत शिशु, किशोर, युवा, प्रौढ़ तथा बृद्ध – सभी सम्मिलित हैं। यही अवस्थायें जीवन के विभिन्न चरण की हैं। यद्यपि अपवाद स्वरूप इनमें व्यतिक्रम भी होते हैं किन्तु सामान्यतः व्यक्ति नवजात शिशु के रूप में अपना जीवन प्रारम्भ करते हुए अग्रिम चरणों की ओर अग्रसर होता है इसलिये ऐसी मान्यताएँ हैं कि आज का बालक (यहाँ बालक से तात्पर्य बालक–बालिका दोनो से है) कल का भविष्य है और कालान्तर में वही देश का प्रबुद्ध नागरिक एवं कर्णधार होगा। तात्पर्य यह है कि यदि जीवन के प्रारम्भिक काल से उसे सही वातावरण, परिवेश, पालन–पोषण एवं पारिवारिक–सामाजिक संस्कारादि मिलें, तो वह निश्चय ही सुसंस्कृत एवं सम्पूर्ण व्यक्ति बन सकेगा। व्यक्तित्व का विकास, क्रमबद्ध एवं सृजनात्मक प्रक्रिया है और यदि प्रारम्भिक काल में इसे सही दिशा नहीं प्राप्त हुई तो कालान्तर में व्यक्ति के पथ–भ्रष्ट होने की सम्भावना प्रबल रहेगी। जैसे, एक छोटे पौधे को उसके बीजांकुरण के साथ ही जब किसी होनहार माली द्वारा सही ढंग से खाद, पानी देकर आवश्यकतानुसार उसकी कटाई–छँटाई करते हुए समुचित संरक्षण प्रदान किया जाता है तो वह कालान्तर में अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। हमारी संस्कृति एवं परम्परा में पौधे व माली के साथ ही मिट्टी और कुम्हार स्वरूप गुरु–शिष्य के दृष्टान्त भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। जैसे मिट्टी के लोंदे को कुम्हार भिन्न–भिन्न स्वरूप प्रदान कर देता है उसी तरह गुरु, अपने शिष्यों को उचित शिक्षा व संस्कार देते हुए

उनके दोषों को दूर करता है और उन्हें सही दशा, दिशा व आकार प्रदान करता है। कबीर दास जी की निम्नलिखित साखी इस दृष्टि से अत्यन्त प्रासंगिक है –

"गुरु कुम्हार सिष कुम्भ है, गढ़ि, गढ़ि काढ़ै खोट।
अन्तर हाथ सहार दै, बाहर बाहै चोट"।।

उक्त दृष्टान्त के उल्लेख करने का आशय व अभिप्राय मात्र यह है कि जैसे पौधे व मिट्टी को उसकी प्राथमिक अवस्था में ही सही दशा, दिशा व आकार दिया जा सकता है उसी तरह से बालक को भी उसकी प्रारम्भिक अवस्था से ही उचित परिवेश, संस्कार आदि प्रदान करते हुए उसके व्यक्तित्व का समुचित व पूर्ण विकास किया जा सकता है। इस दृष्टि से जहाँ पारिवारिक व सामाजिक वातावरण की महती भूमिका है वहीं सहज, सरल, सुरुचिपूर्ण, ज्ञानवर्द्धक एवं जीवनोपयोगी बाल–साहित्य की भूमिका भी अतिशय महत्वपूर्ण है।

प्राचीनकाल से ही बालक के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के लिए गीत, कहानी इत्यादि विधाओं की मदद ली जाती रही है। यद्यपि इनमें से अधिकांश श्रुत–परम्परा से पीढ़ी दर पीढ़ी चलती आ रही हैं, किन्तु प्राचीन स्रोतों से यह भी विदित होता है कि बच्चों की शिक्षा एवं उनके व्यक्तित्व के उन्नयन एवं समुचित विकास के लिए ऐसे साहित्य की रचना की गयी जो बालोपयोगी तथा ज्ञानवर्धक होने के साथ ही रोचक भी थी। पंचतंत्र व हितोपदेश जैसी कृतियाँ इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। इनमें विभिन्न जीव–जन्तुओं की कथाओं के माध्यम से बालकों का ज्ञानवर्द्धन करते हुए उनके व्यक्तित्व–विकास का मार्ग प्रशस्त किया गया। यद्यपि इस प्रकार के बाल साहित्य गिनी चुनी सँख्या में ही उपलब्ध हैं और दीर्घकाल तक इनका अभाव रहा है किन्तु कालान्तर में अमीर खुसरो की पहेलियाँ, राजा कृष्णदेवराय के दरबारी तेनालीराम तथा अकबर के नौ रत्नों में से एक, बीरबल के बुद्धिचातुर्य सम्बन्धी कथाएँ, सूरदास जी का श्रीकृष्ण के बाल माधुर्य से सम्बन्धित साहित्य आदि बाल–साहित्य के क्षेत्र में उल्लेखनीय अवदान हैं। हालाँकि अधिकांश रचनाएँ या तो वात्सल्यपूर्ण बाल क्रीड़ाओं से सम्बन्धित हैं या फिर नीति व ज्ञानवर्धक विषयों से। आधुनिक युग में हिन्दी साहित्य के पुरोधा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, श्रीधर पाठक, अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध", मैथिलीशरण गुप्त, राम नरेश त्रिपाठी, सियाराम शरण गुप्त, सुमित्रा नन्दन पंत, सुभद्रा कुमारी चौहान, सोहन लाल द्विवेदी, महादेवी वर्मा, रामधारी सिंह दिनकर, भवानी प्रसाद मिश्र, शकुन्तला सिरोठिया तथा द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी प्रभृति कविगण के द्वारा हिन्दी बाल साहित्य में अविस्मरणीय योगदान किया गया है।

कहा जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण है। यही बात हिन्दी साहित्य पर भी लागू होती है क्योंकि 1857 में स्वतन्त्रता आंदोलन की ज्वाला के चतुर्दिक फैलाव के साथ ही देश में राष्ट्रीय भावना तीव्रतर और मुखर हुई। इसका प्रभाव बाल साहित्य पर भी पड़ना स्वाभाविक था, इसलिये उस समय से लेकर स्वतन्त्रता प्राप्ति तक के बाल साहित्य में राष्ट्रीयता की भावना

के साथ ही ओज तथा वीर रस से परिपूर्ण रचनाओं की प्रचुरता रही। आजादी के बाद के बाल साहित्य में राष्ट्र के विकास के साथ आजादी की धरोहर को सँजोने व सँवारने की भावना बलवती रही तथा इसके साथ ही बाल जीवन को प्रभावित करने वाले एवं उनके लिए रुचिकर अन्य विषयों से सम्बन्धित बहुत सी रचनाएँ आईं जिन्होंने हिन्दी बाल साहित्य को समृद्ध एवं सामर्थ्यवान् बनाया है।

जहाँ तक हिन्दी बाल काव्य साहित्य का सन्दर्भ है, यह अत्यन्त समृद्ध हो चुका है। विषय वैविध्य के साथ ही शिशु, बालक एवं किशोर सभी के लिए प्रचुर मात्रा में हिन्दी बाल काव्य की रचनाएँ की गयीं हैं तथा वर्तमान में भी की जा रहीं हैं। तात्पर्य यह है कि देश–काल व परिस्थितियों के अनुसार एवं अनुरूप अनेक प्रतिभाशाली कवि इस सर्जना में तत्पर हैं। यह हिन्दी बाल काव्य साहित्य के भविष्य का उज्ज्वल एवं सकारात्मक पक्ष है किन्तु इसके विपरीत वर्तमान समय में अत्यन्त कम आयु में ही बच्चों के हाथ में इलेक्ट्रॉनिक गैजेट्स/उपकरण आ गये हैं जिसके कारण उनकी दुनिया इन्हीं में सिमट रही है। वे बाग–बगीचे, ताल–पोखरे,नदी, गौरैया,कोयल,तितली, बादल–पानी, पहाड़, खेत–खलिहान आदि से अर्थात् प्रकृति से दूर होते जा रहे हैं। साथ ही, आस–पास का परिवेश भी इस प्रकार का हो गया है कि बच्चों का बचपन विलुप्त होता दिखाई पड़ रहा है। इसलिए आज ऐसे बाल साहित्य की अपरिहार्य आवश्यकता का अनुभव किया जा रहा है जो इलेक्ट्रॉनिक उपकरण/गैजेट्स का सशक्त विकल्प बने और बच्चों को सही परिवेश प्रदान करते हुए उनका समुचित विकास कर सके जिससे वे पारिवारिक एवं सामाजिक रिश्तों व मूल्यों के मर्म के साथ ही प्रकृति की आत्मीयता को भी समझ सकें, उन्हें अपना सकें।

इस अंक के साथ हम ''कलरव'' स्तम्भ भी प्रारम्भ कर रहे हैं जिसके अन्तर्गत कतिपय कालजयी एवं वर्तमान में सर्जनारत हिन्दी कवियों की कुछ हिन्दी बाल कविताओं को सम्मिलित करेंगे। विश्वास है, पूर्व की भाँति आप नए कलेवर से युक्त आगामी अंकों को भी अपना स्नेह–सान्निध्य देंगे तथा अपने बहुमूल्य मन्तव्यों से इस काव्य– पत्रिका को संजीवनी प्रदान करते रहेंगे।

शुभकामनाओं सहित।

डॉ० अनिल कुमार

अपने प्यारे बाबू जी

-डा. अनिल कुमार पाठक

तकलीफों के बोझ तले, सूना आँगन, दुखिया बचपन,
हर पल पाई थी पीड़ा, हर पल पाई थी, अड़चन,
फिर भी हँसते रहे सदा, थे, सबसे न्यारे बाबू जी।
अपने प्यारे बाबू जी।।

कभी मिला विश्वासघात,कभी रुकावट औ धोखा,
काँटों भरी राह थी उनकी, सबने रोका,सबने टोका,
फिर भी चलते रहे सदा,आँखों के तारे बाबू जी।
अपने प्यारे बाबू जी।।

निर्भीक सदा, वे डिगे नहीं, झेले थे कष्टों के रेले,
झंझावातों में जीवन के छूट गये सारे मेले,
फिर भी बढ़ते रहे सदा, हम सबके प्यारे बाबू जी।
अपने प्यारे बाबूजी ।।

सर्दी–गर्मी, धूप–छाँव में, बिन संगी, बिन साथी के,
टेढ़ी–मेढ़ी पगडण्डी पर,बिना सहारे लाठी के,
फिर भी चलते रहे सदा, थे, कभी न हारे बाबू जी।
अपने प्यारे बाबू जी।।

❖❖❖

जिन्दगी मेरी प्रिये, इस पार भी, उस पार भी

-पारस नाथ पाठक 'प्रसून'

जिन्दगी मेरी प्रिये, इस पार भी, उस पार भी,
हर जगह मेरी विजय है, हर जगह है, हार भी।

साथ सौरभ के कभी तो, साथ हूँ, अंगार के,
साथ सरिता के कभी तो, साथ हूँ, मैं ज्वार के,
मिलता हृदय का प्यार, तो मिलती विरह की धार भी।
जिन्दगी मेरी प्रिये, इस पार भी, उस पार भी।।

कंटकों की झाड़ियों में या सुमन के प्यार में,
शुष्क पीली डालियों पर या किसलयों के हार में,
भाग्य स्वागत कर रहा, मिलता दुःखों का द्वार भी।
जिन्दगी मेरी प्रिये, इस पार भी, उस पार भी।।

रात रोती साथ मेरे औ सुबह है, गीत गाता,
है, अमां मुझको सुलाती, तो भोर है, मुझको जगाता,
रात काली है,कभी तो सूर्य का श्रृंगार भी।
जिन्दगी मेरी प्रिये, इस पार भी, उस पार भी ।।

व्यथित उर के इस सदन में या धरा की गोद में,
जगत की कठिनाइयों में या हृदय के मोद में,
चलता, कभी जो रेत पर, मिलती, सलिल की धार भी।
जिन्दगी मेरी प्रिये, इस पार भी, उस पार भी ।।

❖❖❖

अम्मा मुझे उड़ाओ

-राम सिंहासन सहाय 'मधुर'

अम्मा, आज लगा दे, झूला,
इस झूले पर मैं झूलूँगा।
इस पर चढ़कर, ऊपर बढ़कर,
आसमान को मैं छू लूँगा।

झूला झूल रही है, डाली,
झूल रहा है पत्ता–पत्ता।
इस झूले पर बड़ा मजा है,
चल दिल्ली, ले चल कलकत्ता।

झूल रही नीचे की धरती,
उड़ चल, उड़ चल, उड़ चल।
बरस रहा है रिमझिम –रिमझिम,
उड़कर मैं छू–लूँ दल –बादल।

वे पंछी उड़ते जाते हैं,
अम्मा तुम भी मुझे उड़ाओ।
पीगें मेरे सुगना कूटी,
मेरे पिंजड़े में आ जाओ।

आओ झूलूँ, तुम्हें झुलाऊँ,
नन्हे को मैं यहीं सुलाऊँ।
आ जा निंदिया, आ जा निंदिया,
तुम भी गाओ, मैं भी गाऊँ।

यह मूरत चुनमुनिया झूले,
जंगल में ज्यों मुनिया झूले।
मेरे प्यारे तुम झूलो, तो–
मेरी सारी दुनिया झूले।

❖❖❖

जा, सपनों से खेलना

निंदिया की गोदी में–
सो जा, मेरे लालना।
सूरज भी सो गया,
पेड़ सभी सो गए।
पत्तों की गोदी में,
फूल सभी सो गए।
तू भी चुप सो जा,
जा, सपनों से खेलना।
चिड़ियाँ भी सो गईं,
चिरौंटे भी सो गए।
गोदी में छिप उनके,
चुनमुन भी सो गए।
तू भी चुप सो जा,
झुलाऊँ तुझे पालना।

❖❖❖

चिड़िया क्यों धूप में खड़ी

-शकुन्तला सिरोठिया

ओ नन्हीं चिड़िया,
क्यों धूप में खड़ी।
कल तक थी, घबराती,
धूप से, बड़ी।
पानी में भीग–भीग–
नहाती थी, खूब,
पर फैला बाल्टी में–
जाती थी, डूब।
हो गया जुकाम या–
बुखार में पड़ी?

वर्षा ने डाली थी–
पानी की धार,
धरा हुई शीतल
अब न गर्मी की मार।
मीठी है धूप अब–
आ गया क्वार,
ना है, जुकाम मुझे–
ना है, बुखार।

❖❖❖

हम सब सुमन एक उपवन के

हम सब सुमन एक उपवन के।
एक हमारी धरती सबकी,
जिसकी मिट्टी में जन्मे हम।
मिली एक ही धूप हमें है,
सींचे गए, एक जल से हम।
पले हुए हैं झूल–झूल कर–
पलनों में हम एक पवन के।
हम सब सुमन एक उपवन के।।

रंग–रंग के रूप हमारे,
अलग–अलग हैं, क्यारी–क्यारी।
लेकिन हम सबसे मिलकर ही–
इस उपवन की शोभा सारी।
एक हमारा माली, हम सब–
रहते, नीचे एक गगन के।
हम सब सुमन एक उपवन के।।

सूरज एक हमारा, जिसकी–
किरणें उसकी कली खिलातीं,
एक हमारा चाँद, चाँदनी–
जिसकी, हम सबको नहलाती।
मिले एकसे स्वर हमको हैं,
भ्रमरों के मीठे गुंजन के।
हम सब सुमन एक उपवन के।।

काँटों में मिलकर हम सबने,
हँस–हँस कर है, जीना सीखा।
एक सूत्र में बँधकर हमने,
हार गले का बनना सीखा।
सबके लिए सुगन्ध हमारी,
हम श्रंगार धनी –निर्धन के।
हम सब सुमन एक उपवन के।

❖❖❖

उठो लाल अब आँखें खोलो

-द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी

उठो लाल अब आँखें खोलो।
पानी लाई हूँ, मुँह धो लो।

बीती रात कमल दल फूले,
उनके ऊपर भँवरें डोले।

चिड़ियाँ चहक उठीं, पेड़ों पर,
बहने लगी हवा अति सुंदर।

नभ में न्यारी लाली छाई,
धरती ने प्यारी छवि पाई।

भोर हुआ, सूरज उग आया,
जल में पड़ी सुनहरी छाया।

ऐसा सुंदर समय न खोओ।
मेरे प्यारे अब मत सोओ।

❖❖❖

गजल

-रघुराज सिंह निश्चल

1

हवाओं का रुख अब बदलने लगा है।
मनुज को मनुज आज छलने लगा है।

अभी तक जो भरते थे दम दोस्ती का,
उन्हें बात करना भी खलने लगा है।

मिली हमको जिस दिन से थोड़ी सी शोहरत,
गजब है कि हर दोस्त, जलने लगा है।

नई सभ्यता की चली जब से आँधी ,
हया का जनाजा निकलने लगा है।

यह दुनिया दिखावे की ही रह गई है,
दिखावे को हर मन मचलने लगा है।

इन आतंकियों पर नियंत्रण नहीं है,
धमाकों से अब इंसान फिसलने लगा है।

भरोसे के काबिल नहीं कोई 'निश्चल',
जबां से अब इंसान फिसलने लगा है।

❖❖❖

2

कौन, तन्हाई का अहसास कराता है, मुझे,
याद, बीती हुई बातों की दिलाता है, मुझे।

मैं कभी रूठ भी जाऊँ तो मनाता है, मुझे,
वो दिल आवेज अदाओं से रिझाता है, मुझे।

कभी हाथों, कभी आँखों से इशारे करके,
कौन, तन्हाई में चुपचाप बुलाता है, मुझे।

उम्र भर साथ निभाने का दिलासा देकर,
कैसे–कैसे वो हसीं–ख्वाब दिखाता है, मुझे।

सोचता हूँ कि मैं दुनिया के लिए कुछ तो करूँ,
त्याग करने का दुस्सह रोग सताता है, मुझे।

है, यकीं मुझको बहुत, इल्मो–हुनर पर अपने,
मैं भी देखूँ तो सही, कौन हराता है, मुझे।

सच तो यह है कि मैं औरों से अलग हूँ,'निश्चल',
मेरा किरदार ही कुछ खास बनाता है, मुझे।

❖❖❖

परिवर्तन का असर

-मधुकर अष्ठाना

परिवर्तन का असर–
आजकल खूब लगा दिखने।
आया, हर आदमी हाट में,
खड़े–खड़े बिकने।

कुछ रोशनी–अंधेरा ओढ़े,
कुछ काजल के घर।
हँसी–खुशी वाले आँगन में,
निर्भय है, विषधर।

भिगो न पाये, निर्झर–
ऐसे बने घड़े चिकने।।

जो पत्थर भी घिसती थी–
वो डोर नहीं आती।
सबको दे, गोरक्षण–
उसे भी स्वर्ण भस्म भाती।

बड़ी–बड़ी योजना बनीं,
छोटे–छोटे सपने।।

सिखे–सिखाये बन्दर–
कितने सगे, मदारी के,
हथेलियों पर आग जलाये,
अश्रु अनारी के।

प्यासों पर पपड़ियाँ जमाये,
साँस लगी, थकने।।

❖❖❖

संकल्प

-रवीन्द्र शुक्ल

ऐ भरत–भू न अब और आँसू बहा,
तेरे बेटों के सीने दरक जायेंगे।
जो तुझे आज नीलाम करने चले ,
वे जमाने में मुँह न दिखा पायेंगे।

मातृ–वंदन विवर्जित जहाँ पर हुआ,
राष्ट्र वह राष्ट्र कैसे कहा जायेगा।
अस्मितावान यदि राष्ट्रवासी, वहाँ–
आसमां तक, लहू से नहा जायेगा।

अब न आँसू बहा, माँ तुझे है, कसम,
हम तो तेरे विजयगान गायेंगे ही।
गंदे हाथों से जिसने छुआ है, तुझे,
उसके अपवित्र खूँ से नहायेंगे ही।

आज पतझड़ का मौसम भले आ गया,
पर बसन्ती बहारें न रुक पायेंगी।
जुल्म की ताकतें आज इठला रहीं,
सरफरोशों पे कब तक कहर ढायेंगी।

मादरे हिन्द सौगन्ध है, आपकी ,
आपसे बदसलूकी न भूलेंगे हम।
अब शहीदों की मंजिल नजर आ रही ,
उनकी मानिन्द फाँसी पे झूलेंगे हम।

पर सितमगर न बेखौफ रह पायेगा,
उसके सपने न साकार हो पायेंगे।
तेरी अस्मत से खिलवाड़ जो कर रहा,
मार डालेंगे, उसको या मर जायेंगे।

❖❖❖

गीत खुशी के

-चक्रधर 'नलिन'

माँ, नभ देखो बुला रहा,
मैं मंगल ग्रह को जाऊँगा।
शटल यान से उतर, वहाँ पर,
गीत खुशी के गाऊँगा।

शुष्क और वीरान भूमि,
उज्ज्वल हिम– पानी है।
वहाँ न वर्षा, नदियाँ, झरने,
मिट्टी रेगिस्तानी है ।

दिन के घंटे हैं, चौबीस,
वहाँ न जल की धाराएँ।
है, लुभावनी धरती उसकी,
नव जीवन की आशाएँ।

वहाँ पहुँचकर, सुंदर–सा घर–
अपना एक बनाऊँगा।

धीरे– धीरे पृथ्वीवासी–
उस ग्रह आएँ–जाएँगे,
छिपे रहस्य सौर मंडल के,
नई खोज कर पाएँगे।

हरे–भूरे हँसते फूलों के–
पौधे वहाँ लगाएँगे,
हम पड़ोसियों के मुख से,
'मंगल रिर्टन' कहलाएँगे।

लोक, लोक में जा–जाकर के,
अपना ध्वज फहराऊँगा।

❖❖❖

मिट्टी पर मिट्टी

-हीरा लाल

मुट्ठी भर मिट्टी डाल गया, मेरी मिट्टी पर,
निकला जो भी कभी उधर से, जहाँ मैं दफन था।

चाहा उठ खड़ा हो जाऊँ दफन के बाद भी,
उठता कैसे मेरी कब्र पर भारी वजन था।

न था गम, न अफसोस, थी सिर्फ फर्ज अदायगी,
कहीं और नहीं, जहाँ मरा, मेरा वतन था।

देख रहा आज भी अपने माजी का चेहरा,
उस वीरान वादी में जहाँ अपना चमन था।

आये, मेरी मैयत पर, दोस्त भी, दुश्मन भी,
नहीं आया कोई तो वह मेरा ही सनम था।

पुरसाहाल

कौन होता है पुरसाहाल, वक्त के मारों का,
जो भी होता है वह कोई फरिश्ता होता है।

बिगड़ जाता जब नसीब किसी का बदकिस्मती से,
ऐसे बदनसीब पर, दिल खुदा का रोता है।

खुशी और गम हैं दो पहलू बस वक्त के, यारों,
होता जैसा वक्त, पहलू भी वैसा होता है।

बेमानी है, खुशी या गम, उन फकीरों के लिये,
जिनके कदमों के नीचे सारा जहां होता हैं।

ख्वाहिशें खुदा है, वक्त के मारों की इमदाद,
करके देखिये खुदा को फख्र कितना होता है।

❖❖❖

रोशनी की आवाज

एक देहाती–
नींम के चौरे से उठी।
एक दुधमुँही रोशनी की काँपती आवाज–
गली–कूचे,
ठाँव–ठाँव–
खिड़की, दरवाजों से होती हुई–
सारे गाँव,
एक लौ को लिए,
जला गई, करोड़ों दिये,
आज की अमावस में–
कितना जागरण है।
हर छोटा– बड़ा,
अपने–अपने में मगन है।

ऊपर –
फरकती हैं, कंगूरों की मूठें।
नीचे,
मुन्ने की माँ–
रचाती है, घरौदें,
जिसे–
जब मन चाहे,
कोई खेले, कोई रौंदे।
रोशनी के–
इस समरस तार में,
बीती बरसातों की–
इस समतल धार में–
कितना गड्ढा, कितना टीला है,
आग के त्यौहार का भी नियम,
अभी ढीला है।

❖❖❖

नेह का एतबार

-प्रेम शंकर मिश्र

दूर के छज्जे से–
एक खनकती छाया,
क्रम–क्रम–
रोपती है, नेह का एतबार।
पास का पोखर –
जिसे काँप–काँप झेलता है।

बिना चाँद का–
वहशी, आवारा आसमान–
इस मजबूरी पर–
रह–रह कर,
खिलखिलाता है।

लोग–बाग मेले में हैं,
अकेले,
इस नन्हे से दिये में–
पूरे बरस का–
अंधकार समेटे,
भर अँजुरी, धीरज जलाए,
मैं–
आज फिर–
तुम्हें अगोरता हूँ।

❖❖❖

चेतना से भावुक जटायु का वरण हो

-डा. नरेश कात्यायन

दूसरों की पीड़ा हमें पीड़ित न कर पाये,
चेतना हमारी, जैसे संज्ञा शून्य हो गयी।
स्वार्थ की विभीषिका से एकाकार हो गये कि–
त्याग की परम्परा निढाल होके सो गयी।
कोई कर्मनाशा–हमसे हमारी अस्मिता को,
स्वच्छ करने का धोखा देकर के धो गयी।
संस्कृति जटायु वाली– परहित प्राणोत्सर्ग,
राम–राज्य लाते–लाते, जाने कहाँ खो गयी।।

दूसरों की हानि पर लगते ठहाके यहाँ,
दनुजों के पास आज मानवों का वेश है।
कौन भला लोक–हेतु सीना खोल के है, खड़ा,
कौन, यहाँ मानवीय अर्थ में 'नरेश' है।
किसी की पुकार पर कोई नहीं दौड़ता है,
लगता है, देश यह, पत्थरों का देश है।
विश्व के निमित्त, एक मार्ग है,प्रदीप्त अभी,
जिसका प्रदर्शक जटायु है, खगेश है।।

रावणी प्रवृत्तियों से त्रस्त हो समाज जब,
कहीं–किसी सभ्यता–सुमुखि का हरण हो।
करुण पुकार गूँजने लगे मनुष्यता की,
जब–जब पौरुष का दानवीकरण हो।
स्वार्थ–ग्रस्त सकल समाज बने, दृष्टिहीन,
त्याग भावना का असामयिक क्षरण हो।
तब–तब, देश के सपूतों, मेरी कामना है,
चेतना से भावुक जटायु का वरण हो।।

❖❖❖

सृष्टि

-डा. कृष्ण नारायण पाण्डेय

ज्योति स्वरूप जो आदि शक्ति,
सविता जिससे है, आलोकित।
संरचना की शाश्वती वृति,
चर–अचर सभी जिससे प्रेरित।।

जिससे जग है, जाज्ज्वल्यमान,
जिसका सब करत, अभिवन्दन।
सत् पथ की प्रेरणा ध्येय से,
उस नव प्रकाश का अभिनन्दन।।

अन्तरिक्ष के शून्य क्षेत्र में,
सूक्ष्म तत्व निश्चित रहता है।
रिक्त नहीं कुछ भी होता है,
सृष्टि प्रलय का क्रम चलता है।।

यथा बीज में महावृक्ष का,
मूल छिपा निश्चित होता है।
अन्तरिक्ष में महासृष्टि का,
स्रोत पड़ा, निष्क्रिय सोता है।।

जब विस्तृत नील गगन के भी,
तत्वों में हलचल होती है।
नए कल्प में वायु तत्व की,
सुन्दर सहज सृष्टि होती हैं।।

❖❖❖

वायु कणों के संघर्षण से,
फिर लाल रंग का भास रूप।
हवा हुई जब ऊर्जा ज्वाला।
रचित तत्व है, अग्नि स्वरूप।।

दो गैसों के संसेचन से,
ज्वाला शीतल नीर बन गयी।
तीन तत्व के सम्मिश्रण से,
सलिल तत्व का रूप हो गयी।।

सरस सलिल में रूप अग्नि है,
वायु तत्व का गुण छूना है।
और गगन का शब्द हहरता,
द्रवित गन्ध पृथ्वी होना है।।

फिर गन्ध युक्त पृथ्वी तल में,
जीवन सृष्टि का क्रम चलता है।
दुहराता, इतिहास निरन्तर,
यथा पूर्व कल्पित बनता है।।

सनक, सनंदन तथा सनातन,
रहे, तपस्या में ही लीन।
ब्रह्मा की मानस रचना भी,
सृष्टि सृजन से रही विहीन।।

❖❖❖

अंगुलियाँ

-डा. करुणाशंकर दुबे

अंगुलियाँ, सदा–सदा से रही हैं, समय की प्रहरी।

अंगुलियाँ न हों तो अंधे की लाठी बेकार है,
अंगुलियाँ न हों तो विद्वान की मेधा को धिक्कार है।
अंगुलियों की है, ये शान, आज अर्जुन बना महान,
अंगुलियों का है ये मान कि एकलव्य का जीवित है, दान।

बाबा साहब की अंगुली समता से सदा रही भारी,
दादी, नानी की अंगुली ममता से सदा रही भारी।
दादा, चाचा की अंगुली अनुशासन के पाठ की रही,
नाना, मामा की अंगुली दुलार के पुचकार की रही।

किसानी में उगती फसल पर तर्जनी न दीजिए,
शनि में फँसे हो तो मध्यमा का वरण कीजिए।
वर सुघर नौकरी साथ मिलें, अनामिका में धर लीजिए,
जिन्दगी की मुश्किलें हों, हल कनिष्ठा इशारे कीजिए।

सुख–दुःख दो पल कभी किसी को अगूँठा दिखा न दीजिए।
बदले हालात हैं, अंगुलियों का रौब बदला है,
एक ओर इन्सान पर ट्रिगर दबाती अंगुलियाँ हैं,
लुईब्रेल की, नेत्रहीनों को राह दिखातीं, अंगुलियाँ हैं।

कहाँ तक कहें, दास्तानों की बात ही रही,
अंगुलियों में फँस रही, कम्प्यूटर की जादूगरी।
बाबू देहाती बनके रहो या बन के रहो, शहरी।
अंगुलियाँ सदा–सदा से रही हैं, समय प्रहरी।

❖❖❖

गीत

-डा. नन्द लाल पथिक

खोल दो, बन्द मन की सभी खिड़कियाँ,
मुस्कुराओ सही, कुछ घड़ी के लिये।
भूल करके व्यथा की कथा, आज तुम,
लो उठा बीन फिर रागिनी के लिये।

जिन्दगी है न केवल दुखों का विजन,
है, सुखों की लड़ी भी जुड़ी साथ में।
जैसे मौसम बसन्ती न रहता सदा,
एक पतझार की भी कड़ी साथ में।

संकटों से परेशां, घुट–घुट जिये,
ये जरूरी नहीं आदमी के लिये।।

है, चमन तो वही दुर्दिनों में सदा,
गुन–गुनाती बहारें लुटाता रहे।
आदमी है, वही, गर्दिशों में पले,
वेदना दूसरों की मिटाता रहे।

यदि निशा में निराशा गहे पाँव तो,
तुम जलो दीप बन रोशनी के लिये।।

जो दुखों से दुखी हों,न विचलित हुए,
नाव उनकी भँवर में सँभलती गयी।
जो बढ़ाये चरण को बढ़ाते गये,
भाग्य रेखा स्वयं ही बदलती गयी ।

बढ़ चलो तो तुम्हें पास मंजिल मिले,
तुम जियो एक मधुयामिनी के लिये।।

❖❖❖

गीत

-डा. महेश दिवाकर

बही नहीं पुरवइया, सावन सूखे चले गये।
निष्ठा घायल हुई, द्वार से अपने भले गये ।।

घर में चक्की–चूल्हे रोते,
छप्पर चिचयाये।
सूनी देहरी देख द्वार के
आँसू भर आये।।

कहो करें क्या अब तो भैया पनघट उजड़ गये।
दही बिलोते कंगन के स्वर, रमने चले गये।।

बही नहीं.....।
इधर–उधर को मैना ताके,
पिंजड़ा दीन हुआ ।
पलक झपकते खुशियाँ बिखरीं,
राम गमगीन हुआ।।

कौन पहुना आया दैया, जाने जुलम करे।
बिना बताये कुछ भी, प्रीतम अपने चले गये।।

बही नहीं.....।
हरी–भरी आँगन में क्यारी ,
उधरी हुई पड़ी ।
रंग–बिरंगी पुष्प लताएँ,
उखरी सभी खड़ीं।

पड़ी अटरिया सूनी कबकी, पंछी कहाँ गये।
चुग्गा–पानी पड़ा है, बिखरा, उड़ने चले गये।।

बही नहीं.....।
यहाँ–वहाँ बिखरे हैं, बर्तन ,
बड़नी द्वार खड़ी।
टूटे बानों की खटिया में,
घरनी बीच पड़ी।।

कातर नैन निहारे दुखिया, पलकें झुके नहीं।
बौना हुआ आचरण घर में, सपने छले गये।।
बही नहीं पुरवइया, सावन सूखे चले गये।
निष्ठा घायल हुई, द्वार से अपने भले गये।।

❖❖❖

सब के मन को भातीं है

-दयानंद जड़िया 'अबोध'

विविध संस्कृतियाँ जब मिलकर,
एक मंच पर आती हैं।
एक नया सा रूप धार, तब–
सब के मन को भातीं हैं।

इन्द्र धनुष के सप्त रंग मिल, सह अस्तित्व बताते हैं,
युवा–बृद्ध– बालक–नर–नारी, सबका उर हर्षाते हैं।
सप्त स्वरों से निष्पादित स्वर ही, संगीत कहाता है,
सरिताओं का सुन्दर संगम, शुचि – प्रयाग कहलाता है।

मिल–जुल रहना ही तो जग में,
मानवता बतलाती है।
उन्नत मानव–जीवन हित जो–
मार्ग प्रशस्त कराती है।।

स्नेह और सौहार्द त्याग कर, कौन सुखी बन पाया है,
कौन अकेले संघर्षों से, इस जग में लड़ पाया हैं।
उन्नत राष्ट्र बनाना हो, तो, प्रेम सूत्र में बँध जाओ,
बन 'अबोध' निज उर–अन्तर में, घृणा भाव मत उपजाओ।

अलग–अलग बिखरी सीकें तो,
कूड़ा सम दिखलाती हैं।
किन्तु इकट्ठी हो, झाड़ू बन,
कूड़ा दूर हटाती है।।

❖❖❖

धरती का चाँद

- प्रेम चन्द्र गुप्त 'विशाल'

ये झुके से नयन, शीश काली घटा,
साँवरी चूनरी की निराली छटा।
लग रही, इस तरह हो, भली राधिके,
चाँद धरती पे मानों रहा मुस्करा।

तन पे पीले वसन, गंध की मृदु चुभन,
स्वर लहर कर रही है, मेरा व्यग्र मन।
कोई कुछ भी कहे, पर कहूँगा, सदा,
चाँद धरती पे मानों रहा मुस्करा।

पथ मिलन का, बड़ा है, सघन, साँवरी,
बैठ, मन–यान चलदी, कहाँ बावरी।
जग के नयनों में तम, पर मुझे दीखता,
चाँद धरती पे मानों रहा मुस्करा।

बह रहा है, निरंतर, मेरा मन तरल,
चाँद उसमें खड़ा किन्तु देता गरल।
मैं जहाँ भी रहा, देखता ही रहा,
चाँद धरती पे मानों रहा मुस्करा।

शीतली छाँव में बढ़ रही है, तपन,
किन्तु अपलक तुझे देखते हैं, नयन।
आस है, देखता, मैं रहूँगा सदा,
चाँद धरती पे मानों रहा मुस्करा।

❖❖❖

गजल

- वाहिद अली 'वाहिद'

1

नफरत की होली जलाओ तो जानें,
मुहब्बत के नगमें सुनाओ तो जानें।

बहाया, बहुत रक्त दंगों में, तुमने,
वतन के लिए खूं बहाओ तो जानें ।

उजड़ी ये बस्ती जो कुछ भाइयों की,
उन्हें आज मिल के बसाओ तो जानें।

लहू वाले हाथों को अब पोछ डालो,
उन्हीं से अब गुलाल उड़ाओ तो जानें।

बिस्मिल, भगत सिंह के वो तराने,
ये चोला बंसती रंगाओं तो जानें।

बहुत लड़ चुके धर्म के नाम पर हम,
गले मिलके फिर मुस्कराओ तो जानें।

रहो प्रेम से सबको जाना है, 'वाहिद',
जमाने कोकुछ देके जाओ तो जानें।

❖❖❖

2

छा गईं, फिर से, सड़क पर वर्दियाँ,
गर्म होती जा रही हैं, सर्दियाँ।

बस्तियों की आग से वो गर्म होंगे,
खून से मजबूत होंगी कुर्सियाँ।

धर्म के चूल्हे गरम होने लगे,
मजहबी–दंगों में पकती मुर्गियाँ।

उसका बेटा, दूध लाते मर गया,
बढ़ गईं चेहरे पे उसके झुर्रियाँ।

इस तरह कड़वाहटें बँटने लगीं,
जीभ पर जैसे लगी हैं, मिर्चियाँ।

धर्म से पहले, हमें रोटी मिले,
आइए मिलकर, लिखें ये अर्जियाँ।

❖❖❖

गजल

- मिर्जा हसन 'नासिर'

1

यूँ ही बैठे ही बैठे, जुल्म सह जाने से क्या होगा,
ग़मों से इस तरह दिल अपना, बहलाने से क्या होगा।

यह भू है, राम की, नानक, मोहम्मद और ईसा की,
ज़रा सोचो, इसे आपस में बँटवाने से क्या होगा।

ये जीवन चार दिन का है, जगत भी, बन्धु, मिथ्या है,
तो फिर निज देश को शोणित में नहलाने से क्या होगा।

न सुनना शत्रु की बातें, न करना मित्र पर घातें,
न तोड़ो नेह–नाते, फूट डालने से क्या होगा।

बुझा दो, ज्वाल मत्सर की, जला दो, नेह की बाती,
बिछा दो, फूल पथ पर, शूल बिखराने से क्या होगा।

अगर चाहो तो सागर मथ के ला सकते हो, अमृत भी,
मगर आलस्य की धारा में बह जाने से क्या होगा।

तुम्हारे बाहुबल पर गर्व भारत को रहा 'नासिर',
दिखा दो, जोर तुम अपना, यूँ ग़म खाने से क्या होगा।

2

काम, दुश्मन कर गये, कोई समझ पाया नहीं,
लड़ने वालों के, सिवा दुख, हाथ कुछ आया नहीं।
कत्ल करके बेगुनाहों को जो बहलाते हैं, दिल,
हमने उन लोगों सा पत्थर दिल कहीं पाया नहीं।
हर अदा उनकी निराली, हर नज़र है, दिल फरेब,
जो जहर दिल में घुला है वह नजर आया नहीं।
उनके बारे में भी तुमने आज तक सोचा कभी,
जिनके सिर पर रह सका, माँ–बाप का साया नहीं।
दे नहीं सकते हो सुख तो कम–से–कम दुख तो न दो,
गम जो दे औरों को वह इन्सान कहलाया नहीं।
हैं, धरम सब एक से, और जातियाँ भी एक हैं,
एक ही सा रक्त है, फिर क्यों मिलन भाया नहीं।
लाख बदलो भेष, पर 'नासिर' से छुप सकते, नहीं,
कह गयीं, आँखें वो सब, जो तुमने बतलाया नहीं।

❖❖❖

जी भर रोये, राम

-रमाकान्त श्रीवास्तव

बैठ, कक्ष में, रिक्त समय में–
जी भर रोते, राम।
विवश,व्याकुल,विह्वल हो–
कहते–''कब का राम मर गया,
यह तो नया राम जन्मा है, चिर दुखियारा।
यदि कोई कहता भी उनसे,
मूर्ख प्रजा के कहने पर ही त्याग किया है,वैदेही का–
तो प्रत्युत्तर रुद्ध कण्ठ से रघुवर का था–
''मूर्ख प्रजा हो या कि सुधी हो–
उसके सुख–दुख, ममता, रुचि, आकांक्षा का ही–
वाहक बनना है, राजा को।
यदि ऐसा है, नहीं,
मान–सम्मान, मुकुट, सिंहासन तजकर–
उसे बिताना होगा, जीवन,
बैठ, किसी कोने में जाकर।
सीता को मैं ला सकता हूँ–
किन्तु, सामने मेरे है–
इस राजकीय जीवन की यह अनिवार्य विवशता।
काश! प्रजा के संस्कार जाग्रत होते–
उसके दबाव से,
सीता को वापस लाने के लिए,
विवश हो जाना पड़ता।
अब तो जीवन भर रोना है–
मुझको भी, वैदेही को भी।
हाय! पूर्वजों के द्वारा–
इन घोर उपेक्षित प्रजाजनों के कारण ही तो–
प्रायश्चित की अग्नि–ज्वाल में–
मुझको जलना पड़ा।
कौन रोक सकता था, मुझको?
सीता को भी नहीं त्यागता–
और राज–संचालन भी दृढ़ता से करता।
...किन्तु मुझे स्वीकार नहीं था–
द्रोह प्रजा का ।
नहीं चाहता, प्रजा करे स्वीकार,
स्वच्छतम सीता को–
निज इच्छा या कि अनिच्छा से।
...प्रजा–त्याग?
विश्वासघात होता उसके प्रति।
अतः सरल था–
सीता का ही त्याग, किया है, वही,
दुख–भार को ओढ़।
प्रजा को उसकी गलती का आभास –
कराना होगा,
वही कर रहा हूँ,
रोने दे, जी भर रोने दो, मुझको।
राम तुम्हारा–
यह पावन आदर्श, त्यागमय–
आज भुला बैठे हैं,
भारत के जन–प्रतिनिधि।
एक लक्ष्य है,एक ध्येय है–सत्ता का सुख,
आम आदमी डूबा है, आकण्ठ–
दुखों में।

❖❖❖

कैसे इरादे लेकर.....

- डा. अजय प्रसून

कभी थे, अमृत सरीखे, अब हो गये, जहर से,
हैं, दिन न जाने कैसे गये, आजकल, ठहर से।

तू मेरी आत्मा से कुछ इस तरह मिला है,
गंगा की एक लहर ज्यों मिले, दूसरी लहर से।

इंसान की रजा से, शैतान की है, चाँदी,
सीधे, शरीफ, सच्चे, लगे भागने, शहर से।

जैसे कि पत्थरों से टकरा के शीश लौटे,
वैसे ही शब्द लौटे, अनुभूति की डगर से।

छै–सात घर, तबाही की आग से हैं, झुलसे,
कैसे इरादे लेकर निकले थे, आप घर से।

हुआ, कत्ल भावना का, अर्थी उठी, दया की,
ये दर्द के कटोरे गये, आँसुओं से भर से।

ओ आसमान वाले सुन ले, जो सुन सके, तू,
इंसान को बचाना, हर हाल में कहर से।

तू प्यार का है, भूखा, मेरे मन के हठी –बच्चे,
उन्हें फिर गले लगा ले जो गिर गये नजर से।

कुछ है, 'प्रसून', अपना ही लक्ष्य भूल बैठे,
ज्यों मूल रूप खोकर, हटती गजल, बहर से।

❖❖❖

भारतवासी, हिन्दी हैं

-श्याम नारायण

हम भारतवासी हिन्दी हैं।
अस्मिता हमारी हिन्दी है।
हिन्दी है, ऐसा पुल, जिसमें एकता, देश की, मिलती है,
तुलसी, ज्ञानेश्वर, नानक की आत्मा, हिन्दी में खिलती है।
हिन्दी, सांस्कृतिक धरोहर है, भारत की आत्मा का स्वर है।।
रसखान, जायसी, मीरा की–
ममता–महतारी हिन्दी है।
हम भारतवासी हिन्दी हैं।।
अस्मिता हमारी हिन्दी है।
इतिहास हमारा, हिन्दी है, विश्वास हमारा, हिन्दी है,
यमुना की लहरें, हिन्दी है, गंगा की धारा हिन्दी है।
हिन्दी है, विंध्याचल का स्वर, हिन्दी है, हिन्द का महासागर,
वेदों की और पुराणों की –
अनुपम फुलवारी, हिन्दी हैं।
हम भारतवासी हिन्दी हैं।
अस्मिता हमारी हिन्दी है।।
हिन्दी भारत का राष्ट्र–गान, हिन्दी भारत का संविधान,
हिन्दी है, आशा–अभिलाषा हिन्दी है–हिन्दी की परिभाषा।
हिन्दी जन–मन की धड़कन है,
प्राणों से प्यारी हिन्दी है।
हम भारतवासी हिन्दी हैं।
अस्मिता हमारी हिन्दी है।।

❖❖❖

चले चलो, बस चलो निरन्तर, जीवन के पथ पर

-विनोद चन्द्र पाण्डेय 'विनोद'

चले चलो, बस चलो, निरन्तर, जीवन के पथ पर।
शूल–फूल पथ पर प्रायः ही आते रहते हैं।

सब अपनी ही बात यहाँ पर, प्रतिदिन कहते हैं।।
किन्तु पथिक इन सबसे अपना पन्थ न तज देना,

एक समान समझना गिरिवर और विमल निर्झर।
चले चलो, बस चलो, निरन्तर, जीवन के पथ पर।।

चलने वाला, एक दिवस मंजिल पा लेता है।
स्वर का साधक, अनहद स्वर में भी गा लेता है।।

थोड़ी बाधा से ही, तुम, साधना नहीं त्यागो,
लक्ष्य किसी को मिला नहीं है,कर्म–मार्ग तजकर।

चले चलो, बस चलो, निरन्तर, जीवन के पथ पर।।
जीवन एक प्रश्न है, जिसका उत्तर, चलना है।

गति से हीन, नीर पंकिल है, निज को छलना है।।
सतत प्रवाहित जल सागर से एक दिवस मिलता,
अपने पर विश्वास रखो, तुम बनो आत्मनिर्भर।
चले चलो, बस चलो निरन्तर, जीवन के पथ पर।।

❖❖❖

दामिनी खींच के लायी गयी है

–अशोक कुमार पाण्डेय 'अशोक'

तुम जीवन–सागर की तरिणी तो,
बना, उसकी पतवार हूँ , मैं।
यदि हो, तुम मीन, तो नीर हूँ, मैं,
मणि हो तो बना, मणिहार हूँ, मैं।
यदि हो, सरिता, सुनो, मेरी प्रिये,
तो बना हुआ, सिन्धु अपार हूँ, मैं।
यदि तुम हो पावस की छवि तो,घन–
कोटि लिये, जल–धार हूँ, मैं।

आओ, सुअंग, उमंग लिये, बक–
पंक्ति की मालिका से छवि छाओ।
छाओ, प्रिये! अलकावली से–
जलदावली, नित्य मेरे मन भाओ।
भाओ, स्वभाव में स्नेह भरे हुए,
हास में मोतियों की झड़ी लाओ।
लाओ, यहाँ बरसात को बात में,
शीतल – वात लिये हुये, आओ।

घोर निराशा– निसा नशा के, ऊषा–
ही सी, सदा तुम आती रहो।
पंथ में सत्यता, सभ्यता की, नव–
लालिमा ले, छवि छाती रहो।
हर्षित हों, जिसको सुन मैं, वही–
गीत, अभीत हो, गाती रहो।
नित्य प्रिये ! रुचि से शुचि प्रेम–
पियूष के प्याले पिलाती रहो।

तुम्हीं से अति कोमल भावों का सौम्य–
श्रृंगार, हमें मनमाना मिला।
तुम्हीं से इस विश्व में प्रेम का अब्धि–
अपार, हमें मनमाना मिला।
तुम्हीं से कल कंचनी रूप अनूप–
का सार, हमें मनमाना मिला।
तुम्हीं से कविता–कला–कल्पना का–
उपहार, हमें मनमाना मिला।

माँग–सिन्दूर या रूप के लोक–
अलौकिक ज्योति जगाई गयी है।
या मधुयोग के आँगन में,
अनुराग की बेली लगाई गयी है।
या घन से घन–कुन्तलों के लिये,
दामिनी, खींच के लायी गयी है।

❖❖❖

रुकना काम नहीं है

-सत्यधर शुक्ल

तुमको आगे बढ़ना ही है,
जीवन में आराम नहीं है।
मंजिल से पहले ही रुकना,
पथिक! तुम्हारा काम नहीं है।

मानव से, मानवता का–
श्रृंगार लुटा, देखो, जाता है,
धरती से आनन्द–प्यार–उपकार–
उठा, देखो, जाता है।

लोप हुआ जाता, जन–मन से,
सत्य, न्याय का, सदाचार का,
पापाचारों का जग में–
विस्तार हुआ, देखो जाता है।

प्रातः ज्योति मिल चुकी है, पर–
उन्नति लक्ष्य दूर है,तुमसे।
ले विश्वास बढ़ो,आशा के,
पथ पर कहीं विराम नहीं है।

मंजिल से पहले ही रुकना,
पथिक! तुम्हारा काम नहीं है।
पथ में, अगणित तूफानों से,
तुमको, करनी भेंट पड़ेगी।

लहर–तरंगों की सेना ले,
तुमसे सरिता प्रखर लड़ेगी।
कंटक – कुटिल बिछे होंगे, बहु,
खंदक, सघन निकुंज मिलेंगे।

उन्नत गिरि–श्रृंगों की माला,
पथ में आकर, विकट लड़ेगी।
तुमको मोहित करने आयेंगी,
मनोज की मधु–लीलाएँ।

किन्तु सफलता की आशा तो,
राही! तुमसे वाम नही हैं।
मंजिल से पहले ही रुकना,
पथिक! तुम्हारा काम नहीं है।

❖❖❖

अपने दुख

-मानिक बच्छावत

हम यदि चाहें,
अपने दुःखों को–
हाट में
रख सकते हैं।
उनको–
बाजार में उठा सकते हैं,
खुले–आम–
नीलाम कर सकते हैं।
और
टीनबंद–
कास्मेटिक्स की तरह–
प्रदर्शित कर सकते हैं।
हम तब देखेंगे,
दुख का बाजार है,
वे भी कोमोडिटी बन सकते हैं,
बिक सकते हैं।
लोग तैयार हैं ,
भुनाने के लिए।
सारी दुनिया इन्हें–
खरीदने को–
लालायित दिखेगी।
इसलिए
अपने दुःखों को–
संभालकर, सहेजकर रखो।
वे अब रेयर चीज हैं,
तुम्हारे बुरे दिनों की–
धरोहर हैं।

❖❖❖

देल छे आये

-श्रीधर पाठक

बाबा आज देल छे आए,
चिज्जी–पिज्जी कुछ ना लाए।
बाबा, क्यों नहीं चिज्जी लाए,
इतनी देली छे क्यों आए?
काँ है मेला बला खिलौना,
कलाकंद लड्डू का दोना।
चूँ–चूँ गाने वाली चिलिया,
चीं–चीं करने वाली गुलिया।
चावल खाने वाली चुइया,
चुनिया, मुनिया, मुन्ना भइया।
मेला मुन्ना, मेली गैया,
काँ मेले मुन्ना की मैया।
बाबा तुम औ काँ से आए,
आँ–आँ चिज्जी क्यों ना लाए?

❖❖❖

माँ कह एक कहानी

-मैथिलीशरण गुप्त

माँ कह एक कहानी।
बेटा समझ लिया क्या तूने मुझको अपनी नानी?
कहती है मुझसे यह चेटी, तू मेरी नानी की बेटी।
कह माँ कह लेटी ही लेटी, राजा था या रानी?
माँ कह एक कहानी।

तू है हठी, मानधन मेरे, सुन उपवन में बड़े सवेरे,
तात भ्रमण करते थे तेरे, जहाँ सुरभि मनमानी।
जहाँ सुरभि मनमानी! हाँ माँ यही कहानी।

वर्ण– वर्ण के फूल खिले थे, झिलमिल कर हिमबिंदु झिले थे,
हलके झोंके हिले मिले थे, लहराता था, पानी।
लहराता था, पानी, हाँ–हाँ यही कहानी।

गाते थे खग कल–कल स्वर से, सहसा एक हंस ऊपर से,
गिरा बिद्ध होकर खग शर से, हुई, पक्षी की हानी।
हुई, पक्षी की हानी? करुणा भरी कहानी!

चौंक उन्होंने उसे उठाया, नया जन्म सा उसने पाया,
इतने में आखेटक आया, लक्ष सिद्धि का मानी।
लक्ष सिद्धि का मानी! कोमल कठिन कहानी।

माँगा उसने आहत पक्षी, तेरे तात किन्तु थे रक्षी,
तब उसने जो था खग भक्षी, हठ करने की ठानी।
हठ करने की ठानी! अब बढ़ चली कहानी।

हुआ विवाद सदय–निर्दय में, उभय आग्रही थे स्वविषय में,
गयी बात तब न्यायालय में, सुनी सभी ने जानी।
सुनी सभी ने जानी! व्यापक हुई कहानी।

राहुल तू निर्णय कर इसका, न्याय पक्ष लेता है किसका?
कह दे निर्भय जय हो जिसका, सुन ले तेरी बानी
माँ मेरी क्या बानी? मैं सुन रहा कहानी।

कोई निरपराध को मारे तो क्यों अन्य उसे न उबारे?
रक्षक पर भक्षक को वारे, न्याय दया का दानी।
न्याय दया का दानी! तूने गुनी कहानी।

चिड़िया कैसे गायेगी

-सूर्य कुमार पाण्डेय

अगर प्रदूषण यूँ ही फैला,
ऐसी मुश्किल आएगी।
पेड़ न होंगे, फूल न पत्ती,
चिड़िया कैसे गाएगी?

अगर प्रदूषण यूँ ही फैला,
ऐसी मुश्किल आएगी।
शान्ति न होगी, शोर मिलेगा,
सब पर आफत छाएगी।

अगर प्रदूषण यूँ ही फैला,
ऐसी मुश्किल आएगी।
नदी न होगी, नाले होंगे,
मछली भी मर जाएगी।

अगर प्रदूषण यूँ ही फैला,
ऐसी मुश्किल आएगी।
सब रोगी होंगे, यह दुनिया–
तब पागल हो जाएगी।

अगर प्रदूषण यूँ ही फैला,
ऐसी मुश्किल आएगी।
हवा न होगी, धुँआ रहेगा,
साँस–साँस घुट जाएगी।

इसीलिए संकल्प हमारा,
जिसको सदा निभाएँगे।
इस धरती को हम सब लोग,
प्रदूषण–मुक्त बनाएँगे।

❖❖❖

प्रेम वृक्ष

प्रेम के वृक्ष में–
जुदाई के फल ही उगते हैं।
हमें पता नहीं होता,
रसदार फल की आशा में,
हर रोज.....हम–
वृक्ष मजबूत करते जाते हैं।
हृष्ट–पुष्ट करते जाते हैं।

पहेली

-डा. नलिनी पुरोहित

जैसे अलग नहीं कर पाते,
सुबह– शाम की–
लाली को।
वैसे ही जुदा नहीं कर पाते,
सुख–दुःख की जाली ,
जुदाई–मिलन की प्याली,
और जन्म–मृत्यु की–
पहेली को।

घर/मकान

पहले हवाएँ चलती थीं–
समर्पण की।
घर.....किलकारियों की भाषा–
समझता था।
अब हवाएँ चलती हैं–
अहम् की।
मकान.....सन्नाटे की भाषा
समझता है।

आदमी/इंसान

आदमी से इंसान बनने में लगे,
सैकड़ों साल।
एक कुर्सी की खातिर,
क्षण में,
इंसान से आदमी
बने जा रहे हैं।
फिर भी गौरवान्वित–
हुए जा रहे हैं।

हिन्दी - हिन्दू- हिन्दुस्तान

-रमा आर्या 'रमा'

जननी, जनक, मूल भाषा कहें हिन्दी सब,
मंत्र एक, एकता का, इसे ही बताते हैं।
रचना–कविता, छन्द, दोहे–लेते, मोह मन,
मंच बैठे,गान–गुण हिन्दी का बताते हैं।
गरिमा–गुमान–मान देश का है, हिन्दी कह,
संसदीय वाणी जो विधान की बताते हैं।
कितनी विडम्बना की बात यह 'रमा' सुन,
हिन्द में ही बैठ, हिन्दी दिवस मनाते हैं,
करते प्रचार हैं, प्रसार, निज भाषा का जो,
नाम मातृ – भाषा कह, मान भी बढ़ाते हैं।
रहते, विधान–संविधान के कलेवर में,
दीप, समारोह में भी, हिन्दी का जलाते हैं।
करते हैं, वन्दना भी, मातृ वरदायिनी की,
डाल, पुष्प–माल भाल, उसी का सजाते हैं।
कितनी विडम्बना की बात यह 'रमा' वे ही,
जाम – अँग्रेजी, धन्यवाद में पिलाते हैं।
रानी–महारानी–पटरानी कही जाती सदा,
भारती के भाल की सदैव, रही बिन्दी है।
रोती है, बिलखती–चौराहे, गाँव,गली–गली,
सिसकी है, द्वार–द्वार, आज वही हिन्दी है।
लाज की है, ओढ़नी में, मुँह को छिपाये हुये,
सौतन सजाये सेज, बैठी, छल–छन्दी है।
बात है, विडम्बना की,'रमा' आज कैसी यहाँ,
हिन्द में बेगानी हुई जाती, आज हिन्दी है।।

❖❖❖

रावण और राम

-डा.सुशीला

रावण तो बहुतेरे,राम अकेला है,
किन्तु राम की हार नहीं हो पायेगी।
जहाँ–तहाँ रावण की प्रभुता को लखकर,
क्षण भर भी मन में मति भ्रम उपजाओ,मत।
बाजारों की तड़क–भड़क के आगे तुम,
मन्दिर की गुरु–गरिमा कभी भुलाओ मत।
साकेती सरयू सी लंकेशी लहरें,
युगों–युगों तक बार–बार टकराएँगी।।
बात व्यक्ति की नहीं, हृदय की आस्था की,
न्यायोचित संकल्प की अन्यायी क्षमता।
पथ की दावेदारी बात दूसरी है,
मंजिल की सहगामिनी तो पथ की दृढ़ता।
कर्णधार कर दो तुम किसी पवन सुत को,
यह केवट की नाव पार हो जायेगी।।
वर्ग शक्ति से जन की शक्ति अनूठी है,
जन–जन की ही शक्ति–मुक्ति की देहरी है।
रावण शायद उसका ही आक्रामक है,
जिसका मेरा राम चिरन्तन प्रहरी है।
जब तक देहरी पर कटिबद्ध सिपाही हैं,
मुक्ति अभय हो, राग चरैवति गायेगी।
रावण तो बहुतेरे, राम अकेला है,
किन्तु राम की हार नहीं हो पायेगी।।

❖❖❖

किससे कहें

-मंजुलता तिवारी 'सुशोभिता'

पीर, इस मन की, भला किससे कहें ,
दर्द कितना है, मिला, किससे कहें।

रास्ता रोके रहीं मजबूरियाँ,
आस पर चलने लगीं जब दूरियाँ।
अपनी किस्मत है कि हम पिसते रहें,
दर्द कितना है, मिला, किससे कहें।

जिन्दगी पाकर नहीं जिन्दा हैं, हम,
जिन्दगी से अपनी शरमिन्दा हैं, हम।
तुम कहो ये सच भला किससे कहें,
दर्द कितना है, मिला, किससे कहें।

रिश्ते रुहानी हमें प्यारे लगे,
दोस्त होकर लोग कुछ खारे लगे।
कैसे–कैसे हम जियें, किससे कहें,
दर्द कितना है, मिला, किससे कहें।।

दूर है, तू, और दिल में आग है,
अब हकीकत है, कहाँ, सब ख्वाब है।
बेवफाई की कथा, किससे कहें,
दर्द कितना है, मिला, किससे कहें।

❖❖❖

दीप बालें

चलो रे, दीप बालें ,
नया पथ, हम भी पा लें।
असीम शान्ति से भरा–
हो, नया जीवन हमारा,
बदल जाये, जगत सारा।
क्रोध, अपना भुला लें।
चलो रे, दीप बालें।।
हम कला का मर्म जान,
मधुरतम जीवन को पाने,
सत्य का संकल्प ठानें।
स्वप्न सच्चा बना लें।
चलो रे, दीप बालें।।
कदम हों, दृढ़ हमारे,
रहें, हम साथ सारे।
सभी दुःख को बिसारें।
नव किरनें फैला लें।
चलो रे, दीप बालें।।

❖❖❖

अनुरोध

-अनीता श्रीवास्तव

बेहद साँझ,
बेहद उदास, साँझ का
निमन्त्रण–
पर मैं न गई।
डूब कर देखा–
सिर्फ उदासी और उदासी,
नया चाहकर पाया,
हर एक साँस बासी।
खोया जाता ढेरों,
बस भूल पर जरा सी।
यादों की बाती,
जैसे कीड़े हों बरसाती।
जेहन मे भर ली,
मैंने सारी बाती।
अब तो लेने दे मुझे,
निश्छल साँस बिहाँसी।

❖❖❖

आत्मदर्शन योग

-सुशील मिश्र

कर्मफल को प्राप्त हेतु करते नहीं जो कर्म हैं,
ध्यान, जिनका श्रेष्ठता पर, रच रहे जो कर्म हैं।
वे सदा योगी हुए हैं, त्याग मन से जो किया है,
योग जिनका अन्तःकरण से चिंतन सदा ही जो किया है।
आशक्त इन्द्रिय कर्म में त्याग करके चल पड़ा,
पुरुष योगारूढ़ होकर शान्ति पथ पर वह बढ़ा।
उद्धार अपना आप ही वह कर सका है,
मित्र अपना आप ही जो बन सका है।
आप ही हैं, मित्र अपने, आप ही हैं,शत्रु भी,
जीत कर पायें स्वयं पर वे, स्वयं के मित्र भी।
दृष्टि होती है, समाहित, पूर्ण चेतन ब्रम्ह में,
आत्म ही उद्धार होगा, स्वयं देखें, दर्पण में।
ज्ञान और विज्ञान से तृप्त अन्तःकरण होता,
वह पुरुष ही ब्रम्ह में ध्यानिष्ठ होता।
पुरुष वासना, कामना, और आशा रहित होता,
जगत प्रपंच रूप रस से प्रलोभन छूट जाता ।
शुद्ध देशे, कुशा, मृग छाला और वस्त्र बिछा हो,
योग आसन ऊँचा न नीचा स्थित स्थापित हो।
मध्य भाग देह का ग्रीवा सिर समान हो,
अचल स्थिति नासिका के ध्यान स्थिति अग्र हो।
ब्रम्हचर्य से हो रत, भय रहित,शान्त युक्त हो,
अचल स्थिति मन सदा, मेरे परायण भाव हो।
योगी, नियंत्रित ध्यान योगी, निर्वाण परमानन्द हो,
योग चित्त संयत आत्म तत्व में परम तत्व हो।

❖❖❖

सृजन स्मरण

शकुन्तला सिरोठिया

जन्म - 15 दिसम्बर 1915 निधन - 05 जून 2005

अपने नन्हें हाथों से हम-
गढ़ते हैं, अपनी तकदीर।
बंद हमारी मुट्ठी में है,
अपने जीवन की तस्वीर।
हमें न मोड़ो, हमें न तोड़ो,
हमें न जंजीरों में जोड़ो।

द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी

जन्म - 01 दिसम्बर 1916 निधन - 29 अगस्त 1998

चाहता हूँ, दूर जाना
चल चुका जितना, न उसमें,
राह लम्बी है, न उसमें,
कोस या दो कोस कुछ भी।
चढ़ शिखर पर मृत्यु के,
औ' कूद जीवन-सिन्धु में, वे-
रत्न जो बिखरे पड़े हैं,
चाहता हूँ, ढूँढ़ लाना।।
चाहता हूँ, दूर जाना।।